दीन सीखने

और सिखाने का तरीक़ा

जस्टिस मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद
तक़ी साहिब उस्मानी

दीन सीखने

और सिखाने का तरीक़ा

ख़िताब

जस्टिस मौलाना मुफ़्ती
मुहम्मद तक़ी साहिब उस्मानी

अनुवादक

मु० इमरान क़ासमी एम०ए० (अलीग)

प्रकाशक

फ़रीद बुक डिपो प्रा० लि०

422, मटिया महल, ऊर्दू मार्किट, जामा मस्जिद देहली 6

फ़ोन आफ़िस 3289786,3289159 आवास 3262486

फ़ेहरिस्ते मज़ामीन

दीन सीखने

और

सिखाने का तरीक़ा

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

"عن ابی قلابة قال حدثنا مالك رضی اللّٰہ تعالیٰ عنه قال اتینا النبی صلی اللّٰه علیه وسلم ونحن شببة متقاربون فاقمنا عنده عشرین یومًا ولیلةً وکان رسول اللّٰہ صلی اللّٰہ علیه وسلم رحیمًا رفیقًا، فلما ظن انّا قد اشتهینا اهلنا، سألناعمن ترکنا بعد نا فاخبرناه فقال ارجعوا الیٰ اهلیکم فاقیموا فیهم وعلموهم و مروهم، وصلوا کما رأیتمونی اصلی، فاذا حضرت الصلٰوة فلیؤذن احدکم ولیؤمکم اکبرکم" (بخاری شریف)

हदीस का तर्जुमा

हज़रत मालिक बिन हवीरस रज़ि. एक सहाबी हैं जो क़बीला–ए–बनू लैस के एक फ़र्द थे, उनका क़बीला मदीना मुनव्वरा से काफ़ी दूर एक बस्ती में आबाद था, अल्लाह तबारक व तआला ने उनको ईमान की तौफ़ीक़ अता फ़रमाई, ये लोग मुसलमान होने के बाद अपने गांव से सफ़र करके मदीना मुनव्वरा में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए, वह अपनी हाज़री का वाक़िआ इस लम्बी हदीस में बयान फ़रमा रहे हैं कि हम हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में मदीना मुनव्वरा हाज़िर हुए और हम लोग सब नौजवान और हमउम्र थे, और हमने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में बीस दिन क़ियाम किया, बीस दिन के बाद हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को ख़्याल हुआ कि शायद हमें अपने घर वालों के पास जाने की ख़्वाहिश पैदा हो रही है, चुनांचे आपने हम से पूछा कि तुम अपने घर में किस किसको छोड़ कर आये हो? यानी तुम्हारे घर में कौन कौन तुम्हारे रिश्तेदार हैं? हमने आपको बता दिया कि फ़लां फ़लां रिश्तेदार हैं। नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम हर इन्सान पर बड़े ही मेहरबान और बड़े ही नर्म आदत वाले थे। चुनांचे आपने हम से फ़रमाया कि अब तुम अपने घर वालों के पास जाओ, और जाकर उनको दीन सिखाओ और उनको हुक्म दो कि वे दीन पर अमल करें, और जिस तरह तुमने मुझे नमाज़ पढ़ते हुए देखा है, उसी तरह तुम भी नमाज़ पढ़ो

और जब नमाज़ का वक़्त आ जाये तो तुम में से एक आदमी अज़ान दिया करे, और तुम में जो उम्र में बड़ा हो वह इमाम बने, ये हिदायतें देकर आपने हमें रुख़्सत फ़रमा दिया।

दीन सीखने का तरीक़ा, सोहबत

यह एक लम्बी हदीस है, इसमें हमारे लिये हिदायत के अनेक सबक़ हैं, सब से पहली बात जो हज़रत मालिक बिन हवीरस रज़ियल्लाहु अन्हु ने बयान फ़रमाई वह यह थी कि हम नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में आये और हम नौजवान थे, और तक़रीबन बीस दिन हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में रहे, हक़ीक़त में दीन सीखने का यही तरीक़ा था, उस ज़माने में न कोई बाक़ायदा मदरसा था और न कोई यूनिवर्सिटी थी, न कोई कॉलेज था और न किताबें थीं, बस दीन सीखने का यह तरीक़ा था कि जिसको दीन सीखना होता वह हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सोहबत में आ जाता, और आकर आपको देखता कि आप किस तरह ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं? सुबह से लेकर शाम तक आपके मामूलात क्या हैं? लोगों के साथ आपका रवैया कैसा है? आप घर में किस तरह रहते हैं? बाहर वालों के साथ किस तरह रहते हैं? ये सब चीज़ें अपनी आंखों से देख देख कर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सीरते तैयबा को मालूम करते और इसी से उनको दीन समझ में आता।

''सोहबत'' का मतलब

अल्लाह तआ़ला ने दीन सीखने का जो असल तरीक़ा

मुक़र्रर फ़रमाया है वह यही सोहबत है, इसलिये कि किताब और मदरसे से दीन सीखना तो उन लोगों के लिये है जो पढ़े लिखे हों, और फिर तन्हा किताब से पूरा दीन भी हासिल नहीं हो सकता, अल्लाह तआला ने इन्सान की ऐसी फ़ितरत बनाई है कि सिर्फ़ किताब पढ़ लेने से उसको कोई इल्म व हुनर नहीं आता। दुनिया का कोई इल्म सिर्फ़ किताब के ज़रिये हासिल नहीं हो सकता, बल्कि इल्म व हुनर के लिये सोहबत की ज़रूरत होती है। सोहबत का मतलब यह है कि किसी जानने वाले के पास कुछ दिन रहना और उसके तर्ज़े अमल का मुशाहदा करना, इसी का नाम सोहबत है, और यही सोहबत इन्सान को कोई इल्म व हुनर और कोई फ़न सिखाती है। जैसे अगर किसी को डॉक्टर बनना है तो उसको किसी डॉक्टर की सोहबत में रहना होगा, अगर किसी को इन्जीनियर बनना है तो उसको किसी इन्जीनियर की सोहबत में रहना होगा। यहां तक कि अगर किसी को खाना पकाना सीखना है तो उसको भी कुछ वक़्त बावर्ची की सोहबत में गुज़ारना होगा और उस से सीखना पड़ेगा। इसी तरह अल्लाह तआला ने दीन का मामला रखा है कि यह दीन सोहबत के बग़ैर हासिल नहीं होता।

सहाबा रज़ि. ने किस तरह दीन सीखा?

इसी वजह से अल्लाह तआला ने जब कभी कोई आसमानी किताब दुनिया में भेजी तो उसके साथ एक रसूल ज़रूर भेजा, वर्ना अगर अल्लाह तआला चाहते तो बराहे रास्त किताब नाज़िल फ़रमा देते, लेकिन बराहे रास्त किताब

नाज़िल करने के बजाये हमेशा किसी रसूल और पैग़म्बर के ज़रिये किताब भेजी, ताकि वह रसूल और पैग़म्बर उस किताब पर अ़मल करने का तरीक़ा लोगों को बताये और उस रसूल की सोहबत और उसकी ज़िन्दगी के तर्ज़े अ़मल से लोग यह सीखें कि उस किताब पर किस तरह अ़मल किया जाता है। हज़राते सहाबा रज़ि. से पूछिये कि उन्होंने किस यूनीवर्सिटी में तालीम पाई? वे हज़रात कौन से मदरसे से पढ़ कर फ़ारिग़ हुए थे? उन्होंने कौन सी किताबें पढ़ी थीं? सही बात यह है कि उनके लिये न तो ज़ाहिरी तौर पर कोई मदरसा था, न ही उनके लिये कोर्स मुक़र्रर था, न कोई निसाबे तालीम था, न किताबें थीं, लेकिन एक सहाबी के तर्ज़े अ़मल पर हज़ार मदरसे और हज़ार किताबें क़ुरबान हैं, इसलिये कि उस सहाबी ने नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सोहबत उठाई और सोहबत के नतीजे में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की एक एक अदा को देखा, और फिर उस अदा को अपनी ज़िन्दगी में अपनाने की कोशिश की और इस तरह वह सहाबी बन गये।

अच्छी सोहबत इख़्तियार करो

बहर हाल! यह सोहबत ऐसी चीज़ है जो इन्सान को कीमिया बना देती है, इसी लिये हमारे तमाम बुज़ुर्गों का कहना यह है कि अगर दीन सीखना है तो फिर अपनी सोहबत दुरुस्त करो, और ऐसे लोगों के साथ उठो बैठो और ऐसे लोगों के पास जाओ जो दीन के हामिल (उठाने वाले और उसको अपनाए हुए) हैं। वह सोहबत धीरे धीरे तुम्हारे

अन्दर भी दीन की बड़ाई, मुहब्बत और उसकी फ़िक्र पैदा करेगी, और ग़लत सोहबत में बैठोगे तो फिर ग़लत सोहबत के असरात तुम पर ज़ाहिर होंगे, और यह दीन हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के वक़्त से इसी तरह चला आ रहा है। हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सोहबत से सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम तैयार हुए और सहाबा-ए-किराम की सोहबत से ताबिईन तैयार हुए, और ताबिईन की सोहबत से तब्ए ताबिईन तैयार हुए, यह सारे दीन का सिलसिला उस वक़्त से लेकर आज तक इसी तरह चला आ रहा है।

दो सिलसिले

मेरे वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह्मतुल्लाहि अ़लैहि "मआ़रिफ़ुल कुरआन" में लिखते हैं कि अल्लाह तबारक व तआ़ला ने इन्सान की हिदायत के लिये दो सिलसिले जारी फ़रमा दिये हैं, एक अल्लाह की किताब का सिलसिला, और दूसरा रिजालुल्लाह का सिलसिला। एक अल्लाह की किताब और दूसरे अल्लाह के आदमी। यानी अल्लाह तआ़ला ने ऐसे रिजाल पैदा फ़रमाये हैं जो इस किताब पर अ़मल का नमूना हैं, इसलिये अगर कोई शख़्स दोनों सिलसिलों को लेकर चले तो उस वक़्त दीन की हक़ीक़त समझ में आती है, लेकिन अगर सिर्फ़ किताब लेकर बैठ जाये और रिजालुल्लाह (अल्लाह वालों) से ग़ाफ़िल हो जाये तो भी गुमराही में मुब्तला हो सकता है, और अगर तन्हा रिजालुल्लाह की तरफ़ देखे और किताबुल्लाह से ग़ाफ़िल हो

जाये तो भी गुमराही में मुब्तला हो सकता है, इसलिये दोनों चीज़ों को साथ लेकर चलने की ज़रूरत है।

इसी लिये हमारे बुज़ुर्गों ने फ़रमाया कि इस वक़्त दीन को हासिल करने और उस पर अमल करने का आसान तरीक़ा यह है कि आदमी अल्लाह वालों की सोहबत इख़्तियार करे, और ऐसे लोगों की सोहबत इख़्तियार करे जो अल्लाह तआला के दीन की समझ रखते हैं, और दीन पर अमल पैरा हैं, जो शख़्स जितनी सोहबत इख़्तियार करेगा वह उतना ही दीन के अन्दर तरक़्क़ी करेगा।

बहर हाल! यह हज़राते सहाबा-ए-किराम चूंकि नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से दूर रहते थे, इसी लिये ये हज़रात बीस दिन निकाल कर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में रहे और उन बीस दिनों में दीन की जो बुनियादी तालीमात थीं वे हासिल कर लीं, दीन का तरीक़ा सीख लिया और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सोहबत से फ़ैज़ हासिल करने वाले बन गये।

अपने छोटों का ख़्याल

फिर ख़ुद ही हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के दिल में यह ख़्याल आया कि ये नौजवान लो हैं, ये अपने घर बार छोड़ कर आये हैं, इसलिये इनको अपने घर वालों की याद आती होगी, और इनको अपने घर वालों से मिलने की ख़्वाहिश होगी, तो ख़ुद ही हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उनसे पूछा कि तुम अपने घर में किस

किसको छोड़ कर आये हो?

उनमें से कुछ ऐसे नौजवान थे जो नये शादी शुदा थे। जब उन्होंने बताया कि हम फ़लां फ़लां को छोड़ कर आये हैं, तो आपने उनसे फ़रमाया कि अब तुम अपने घरों को वापस जाओ।

घर से दूरे रहने का उसूल

इस हदीस के तहत उलमा–ए–किराम ने यह मसला लिखा है कि जो आदमी शादी शुदा हो, उसको किसी सख़्त ज़रूरत के बग़ैर अपने घर से ज़्यादा समय तक दूर न रहना चाहिये, इसमें ख़ुद अपनी भी हिफ़ाज़त है और घर वालों की भी हिफ़ाज़त है। क्योंकि अल्लाह तआला ने हमें ऐसा दीन अता फ़रमाया है जिसमें तमाम सिम्तों और तमाम जानिबों की रियायत है, यह नहीं कि एक तरफ़ को झुकाव हो गया और दूसरे पहलू निगाहों से ओझल हो गये, बल्कि इस दीने इस्लाम के अन्दर एतिदाल है, और इसी लिये इसको "दरमियानी उम्मत" से ताबीर फ़रमाया। इसलिये एक तरफ़ तो यह फ़रमा दिया कि दीन सीखने के लिये अच्छी सोहबत उठाओ, लेकिन दूसरी तरफ़ यह बता दिया कि ऐसा न हो कि अच्छी सोहबत उठाने के नतीजे में दूसरों के जो हुक़ूक़ तुम्हारे ज़िम्मे हैं वे पामाल होने लगें, बल्कि दोनों बातों की रियायत करनी चाहिये। चुनांचे उन हज़रात से फ़रमाया कि बीस दिन तक यहां क़ियाम कर लिया और ज़रूरी बातें तुमने इन दिनों के अन्दर सीख लीं, अब तुम्हारे ज़िम्मे तुम्हारे घर वालों के हुक़ूक़ हैं, और ख़ुद तुम्हारे अपने हुक़ूक़ हैं इसलिये

तुम अपने घरों को वापस जाओ।

दूसरे हुकूक़ की अदायगी की तरफ़ तवज्जोह

अब आप ग़ौर करें कि उन्होंने बीस दिन में दीन की तमाम तफ़सीलात तो हासिल नहीं कर ली होंगी, और न ही दीन का सारा इल्म सीखा होगा। अगर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम चाहते तो उनसे फ़रमा देते कि अभी और कुरबानी दो और कुछ दिन और यहां रहो, ताकि तुम्हें दीन की सारी तफ़सीलात मालूम हो जायें, लेकिन हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जब यह देखा कि उन्होंने दीन की ज़रूरी बातें सीख ली हैं, अब उनको दूसरे हुकूक़ की अदायगी के लिये भेजना चाहिये।

इतना इल्म सीखना लाज़मी फ़र्ज़ है

यहां यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि दीन के इल्म की दो क़िस्में हैं, पहली क़िस्म यह है कि दीन का इतना इल्म सीखना जो इन्सान को अपने फ़राइज़ और वाजिबात अदा करने के लिये ज़रूरी है, जैसे यह कि नमाज़ कैसे पढ़ी जाती है? नमाज़ों में रक्अतों की तायदाद कितनी है? नमाज़ में कितने फ़राइज़ और वाजिबात हैं? रोज़ा कैसे रखा जाता है, और किस वक़्त फ़र्ज़ होता है? ज़कात कब फ़र्ज़ होती है, और कितनी मिक़दार (मात्रा) में किन अफ़राद को अदा की जाती है? और हज कब फ़र्ज़ होता है? और यह कि कौन सी चीज़ हलाल है और कौन सी चीज़ हराम है? जैसे झूठ बोलना हराम है, ग़ीबत करना हराम है, शराब पीना हराम है,

सुअर खाना हराम है, यह हलाल व हराम की बुनियादी मोटी मोटी बातें सीखना, इसलिये इतनी मालूमात हासिल करना जिसके ज़रिये इन्सान अपने फ़राइज़ और वाजिबात अदा कर सके, और हराम से अपने आपको बचा सके, हर मुसलमान मर्द और औ़रत के ज़िम्मे लाज़मी फ़र्ज़ है। यह जो हदीस शरीफ़ में आया है कि:

"طلب العلم فريضة على كل مسلم ومسلمة"

यानी इल्म का तलब करना हर मुसलमान मर्द और औ़रत के ज़िम्मे फ़र्ज़ है। इस से मुराद यहीं इल्म है।

इतना इल्म हासिल करने के लिये जितनी भी कु़रबानी देनी पड़े कु़रबानी दे, जैसे मां बाप को छोड़ना पड़े तो छोड़े, बीवी को और बहन भाईयों को छोड़ना पड़े तो छोड़े, इसलिये कि इतना इल्म हासिल करना फ़र्ज़ है। अगर कोई यह इल्म हासिल करने से रोके, जैसे मां बाप रोकें, बीवी रोके, या बीवी को शौहर रोके तो उनकी बात मानना जायज़ नहीं।

यह इल्म फ़र्ज़े किफ़ाया है

इल्म की दूसरी कि़स्म यह है कि आदमी दीन के इल्म की बाक़ायदा पूरी तफ़सीलात हासिल करे और बाक़ायदा आ़लिम बने, यह हर इन्सान के ज़िम्मे फ़र्ज़े अ़ैन (लाज़मी फ़र्ज़) नहीं है, बल्कि यह इल्म फ़र्ज़े किफ़ाया है। अगर कुछ लोग आ़लिम बन जायें तो बाक़ी लोगों का फ़रीज़ा भी अदा हो जाता है। जैसे एक बस्ती में एक आ़लिम है और दीन की तमाम ज़रूरतों के लिये काफ़ी है, तो एक आदमी के आ़लिम बन जाने से बाक़ी लोगों का फ़रीज़ा भी साकि़त हो जायेगा,

और अगर कोई बड़ी बस्ती हो या शहर हो तो उसके लिये जितने आलिमों की ज़रूरत हो, उस ज़रूरत के मुताबिक़ उतने लोग आ़लिम बन जायें तो बाक़ी लोगों का फ़रीज़ा साक़ित हो जायेगा।

दीन की बातें घर वालों को सिखाओ

बहर हाल! जब हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह महसूस किया कि इन हज़रात ने फ़र्जे अ़ैन के लायक़ जो इल्म था वह बीस दिन में हासिल कर लिया है, और अब उनको और यहां रोकने में यह अन्देशा है कि उनके घर वालों की हक़ तल्फ़ी न हो। इसलिये आपने उन हज़रात से फ़रमाया कि अब आप अपने घरों को वापस जाओ, लेकिन साथ ही यह तंबीह भी फ़रमा दी कि यह न हो कि घर वालों के पास जाकर ग़फ़लत के साथ ज़िन्दगी गुज़ारना शुरू कर दो, बल्कि आपने फ़रमाया कि जो कुछ तुमने यहां रह कर इल्म हासिल किया और जो कुछ दीन की बातें यहां सीखीं वे बातें अपने घर वालों को जाकर सिखाओ। इस से पता चला कि हर इन्सान के ज़िम्मे यह भी फ़र्ज़ है कि वह जिस तरह ख़ुद दीन की बातें सीखता है, अपने घर वालों को भी सिखाये, उनको इतनी दीन की बातें सिखाना जिनके ज़रिये वे सही मायनों में मुसलमान बन सकें और मुसलमान रह सकें, यह तालीम देना भी हर मुसलमान के ज़िम्मे फ़र्जे अ़ैन है। और यह ऐसा ही फ़र्ज़ है जैसे नमाज़ पढ़ना फ़र्ज़ है, जैसे रमज़ान में रोज़े रखना फ़र्ज़ है, ज़कात अदा करना और हज अदा करना फ़र्ज़ है, ये काम जितने ज़रूरी हैं, इतना ही

घर वालों को दीन सिखाना भी ज़रूरी है।

औलाद की तरफ़ से ग़फ़लत

हमारे समाज में इस बारे में बड़ी कोताही पाई जाती है, अच्छे ख़ासे पढ़े लिखे, समझदार और बज़ाहिर दीनदार लोग भी अपनी औलाद को दीनी तालीम देने की फ़िक्र नहीं करते। औलाद को न तो कुरआने करीम सही तरीक़े से पढ़ना आता है, न उनको नमाज़ों का सही तरीक़ा आता है, और न ही उनको दीन की बुनियादी मालूमात हासिल हैं। दुनियावी तालीम आला दर्जे की हासिल करने के बावजूद उनको यह पता नहीं होता कि फ़र्ज़ और सुन्नत में क्या फ़र्क़ होता है, इसलिये औलाद को दीन सिखाने का इतना ही एहतिमाम करना चाहिये जितना ख़ुद नमाज़ पढ़ने का एहतिमाम करते हैं। और आगे आपने फ़रमाया कि जाकर घर वालों को हुक्म दो, यानी उनको दीन की बातों का और फ़राइज़ पर अमल करने का हुक्म दो।

किस तरह नमाज़ पढ़नी चाहिए

फिर फ़रमाया:

"صَلُّوا كَمَا رَأَيْتُمُوْنِيْ أُصَلِّيْ"

यानी अपने वतन जाकर इसी तरह नमाज़ पढ़ना जिस तरह तुमने मुझे नमाज़ पढ़ते हुए देखा है, अब यह देखिये कि आपने उनसे सिर्फ़ यह नहीं फ़रमाया कि नमाज़ पढ़ते रहना, बल्कि यह फ़रमाया कि नमाज़ इस तरह पढ़ना जिस तरह तुमने मुझे पढ़ते हुए देखा है। यानी यह नमाज़ दीन का

सतून है, इसलिये इसको ठीक इसी तरह अदा करने की कोशिश करनी चाहिए जिस तरह हुज़ूर नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से साबित और मन्कूल है, यह मसला भी हमारे समाज में बड़ी तवज्जोह का तालिब है, अल्लाह तआ़ला के फ़ज़्ल व करम से बहुत से लोग नमाज़ पढ़ते तो हैं, लेकिन वह पढ़ना ऐसा होता है जैसे सर से एक बोझ उतार दिया, न इसकी फ़िक्र कि क़ियाम सही हुआ या नहीं? रुकू सही हुआ या नहीं? सज्दा सही हुआ या नहीं? और यह अर्कान सुन्नत के मुताबिक़ अदा हुए या नहीं?

बस जल्दी जल्दी नमाज़ पढ़ कर फ़ारिग़ हो गये और सर से फ़रीज़ा उतार दिया, हालांकि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम यह फ़रमा रहे हैं कि:

"صَلُّوا كَمَا رَأَيْتُمُونِي أُصَلِّي"

यानी जिस तरह मुझे नमाज़ पढ़ते हुए देखा है, इसी तरह नमाज़ पढ़ो।

नमाज़ सुन्नत के मुताबिक़ पढ़िये

देखिये! अगर नमाज़ सुन्नत के मुताबिक़ इस तरह पढ़ी जाये जिस तरह नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से साबित है है, तो इसमें कोई ज़्यादा वक़्त ख़र्च नहीं होता, न ही ज़्यादा मेहनत लगती है, बल्कि उतना ही वक़्त ख़र्च होगा और उतनी ही मेहनत ख़र्च होगी जितनी कि इस तरीक़े से पढ़ने में लगती है जिस तरीक़े से हम पढ़ते हैं, लेकिन अगर थोड़ा सा ध्यान और तवज्जोह कर ली जाये कि जो

नमाज़ मैं पढ़ रहा हूं वह सुन्नत के मुताबिक़ हो जाये, तो उस तवज्जोह के नतीजे में वही नमाज़ सुन्नत के नूर से मुनव्वर और रोशन हो जायेगी, और ग़फ़लत से अपने तरीक़े से पढ़ते रहोगे तो फ़रीज़ा तो अदा हो जायेगा और नमाज़ छोड़ने का गुनाह भी न होगा, लेकिन सुन्नत का जो नूर है, जो उसकी बर्कत है और उसके जो फ़ायदे हैं वे हासिल न होंगे।

एक बार मैंने इसी मज्लिस में तफ़सील से अर्ज़ किया था कि सुन्नत के मुताबिक़ किस तरह नमाज़ पढ़ी जाती है, वह बयान किताब की शक्ल में छप चुका है, जिसका नाम "नमाज़ें सुन्नत के मुताबिक़ पढ़िये" है, यह एक छोटा सा रिसाला है और आम तौर पर लोग नमाज़ में जो ग़लतियां करते हैं उसमें उनकी निशान देही कर दी है, आप उस रिसाले को पढ़ें और फिर अपनी नमाज़ का जायज़ा लें, और यह देखें कि जिस तरीक़े से आप नमाज़ पढ़ते हैं उसमें और जो तरीक़ा उस रिसाले में लिखा है उसमें क्या फ़र्क़ है? आप अन्दाज़ा लगायेंगे कि उस रिसाले के मुताबिक़ नमाज़ पढ़ने में कोई ज़्यादा वक़्त ख़र्च नहीं होगा, ज़्यादा मेहनत नहीं लगेगी, लेकिन सुन्नत का नूर हासिल हो जायेगा। इसलिये हर मुसलमान को इसकी फ़िक्र करनी चाहिये।

हज़रत मुफ़्ती साहिब रह. का नमाज़ की दुरुस्ती का ख़्याल

मेरे वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी

साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि की तिरासी (८३) साल की उम्र में वफ़ात हुई, बचपन से दीन ही पढ़ना शुरू किया, सारी उम्र दीन ही की तालीम दी और फ़तवे लिखे, यहां तक कि हिन्दुस्तान में दारुल उलूम देवबन्द के मुफ़्ती–ए–आज़म क़रार पाये, फिर जब पाकिस्तान तशरीफ़ लाये तो यहां पर भी "मुफ़्ती–ए–आज़म" के लक़ब से मशहूर हुए, और बिला मुबालग़ा लाखों फ़तवों के जवाब ज़बानी और लिखित रूप में दिये, और सारी उम्र पढ़ने पढ़ाने में गुज़ारी। एक बार फ़रमाने लगे कि मेरी सारी उम्र फ़िक़ा (मसाइल वग़ैरह) पढ़ने पढ़ाने में गुज़री, लेकिन अब भी कभी कभी नमाज़ पढ़ते हुए ऐसी सूरते हाल पैदा हो जाती है कि समझ में नहीं आता कि अब क्या करूं। चुनांचे नमाज़ पढ़ने के बाद किताब देख कर यह पता लगाता हूं कि मेरी नमाज़ दुरुस्त हुई या नहीं? लेकिन मैं लोगों को देखता हूं कि किसी के दिल में यह ख़्याल ही पैदा नहीं होता कि नमाज़ दुरुस्त हुई या नहीं? बस पढ़ ली और सुन्नत के मुताबिक़ होने या न होने का ख़्याल तो बहुत दूर की बात है।

नमाज़ फ़ासिद हो जायेगी

नमाज़ की सफ़ों में रोज़ाना यह मन्ज़र नज़र आता है कि लोग आराम से बिल्कुल बेपरवाह होकर नमाज़ में खड़े सर खुजला रहे हैं, या दोनों हाथ चेहरे पर फेर रहे हैं। याद रखिये! इस तरह अगर दोनों हाथों से कोई काम कर लिया और उस हालत में इतना वक़्त गुज़र गया कि जितनी देर में तीन बार "सुब्हा–न रब्बियल आला" की तस्बीह पढ़ी जा सके

तो बस नमाज़ टूट गयी, फ़ासिद हो गयी, फ़रीज़ा ही अदा न हुआ। लेकिन लोगों को इसकी कोई परवाह नहीं, कभी कभी दोनों हाथों से कपड़े दुरुस्त कर रहे हैं, या दोनों हाथों से पसीना साफ़ कर रहे हैं, हालांकि इस तरह करने में ज़्यादा वक़्त लग जाये तो नमाज़ ही फ़ासिद हो जाती है। याद रखिये! नमाज़ में ऐसी हैअत (शक्ल व सूरत) इख़्तियार करना जिस से देखने वाला यह समझे कि शायद यह नमाज़ नहीं पढ़ रहा है, तो ऐसी हैअत से नमाज़ फ़ासिद हो जाती है। और अगर कोई शख़्स नमाज़ में एक हाथ से काम करे, उसके बारे में फ़ुक़हा–ए–किराम ने यह मसला लिखा है कि अगर कोई शख़्स एक रुक्न में बराबर तीन बार एक हाथ से कोई काम करे कि देखने वाला उसे नमाज़ में न समझे तो नमाज़ फ़ासिद हो जायेगी। इसी तरह सज्दा करते वक़्त पेशानी (माथा) तो ज़मीन पर टिकी हुई है, लेकिन दोनों पांव ज़मीन से उठे हुए हैं, अगर पूरे सज्दे में दोनों पांव पूरे उठे रहे और ज़रा सी देर के लिये भी ज़मीन पर न टिके तो सज्दा अदा न हुआ, और जब सज्दा अदा न हुआ तो नमाज़ भी दुरुस्त न हुई।

सिर्फ़ नियत का दुरुस्त कर लेना काफ़ी नहीं

ये चन्द बातें मिसाल के तौर पर अर्ज़ कर दीं, इनकी तरफ़ तवज्जोह और ध्यान नहीं, और इनकी इस्लाह और दुरुस्ती (सुधार) की फ़िक्र नहीं, बल्कि उनकी तरफ़ से ग़फ़लत है। वक़्त भी ख़र्च कर रहे हैं, नमाज़ भी पढ़ रहे हैं, लेकिन उसको सही तरीक़े से अदा करने की फ़िक्र नहीं,

इसका नतीजा यह है कि करी कराई मेहनत अकारत जा रही है। और अब तो यह हाल है कि अगर किसी को बताया जाये कि भाई! नमाज़ में ऐसी हर्कत नहीं करनी चाहिये तो एक टक्साली जवाब हर शख़्स को याद है, बस वह जवाब दे दिया जाता है, वह यह कि: "अल आमालु बिन्नियात" यह ऐसा जवाब है कि जो हर जगह जाकर फ़िट हो जाता है। यानी हमारी नियत तो दुरुस्त है, और अल्लाह मियां नियत को देखने वाले हैं। अरे भाई! अगर नियत ही काफ़ी थी तो यह सब तकल्लुफ़ करने की क्या ज़रूरत थी, बस घर में बैठ कर नियत कर लेते कि हम अल्लाह मियां की नमाज़ पढ़ रहे हैं, बस नमाज़ अदा हो जाती। अरे भाई! नियत के मुताबिक़ अ़मल भी तो चाहिये। जैसे आपने यह नियत तो कर ली कि मैं लाहौर जा रहा हूं, और कोयटा वाली गाड़ी में बैठ गये तो क्या ख़ाली यह नियत करने से कि मैं लाहौर जा रहा हूं, क्या तुम लाहौर पहुंच जाओगे? इसी तरह अगर नियत कर ली कि मैं नमाज़ पढ़ रहा हूं, लेकिन नमाज़ पढ़ने का सही तरीक़ा इख़्तियार नहीं किया, तो सिर्फ़ नियत करने से नमाज़ किस तरह दुरुस्त होगी? जब वह तरीक़ा इख़्तियार नहीं किया तो सिर्फ़ नियत करने से नमाज़ किस तरह दुरुस्त होगी? जब वह तरीक़ा इख़्तियार न किया हो जो जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बयान फ़रमाया है। इसी लिये आपने उन नौजवानों को रुख़्सत करते हुए इर्शाद फ़रमाया कि इस तरह नमाज़ पढ़ो जिस तरह तुमने मुझे नमाज़ पढ़ते हुए देखा है। अल्लाह तआ़ला हम सबको सुन्नत के मुताबिक़

नमाज़ पढ़ने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, आमीन।

अज़ान की अहमियत

फिर आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनसे फ़रमायाः

"فاذا حضرت الصلوٰة فليؤذن لكم احدكم"

यानी जब नमाज़ का वक़्त आ जाये तो तुम में से एक शख़्स अज़ान दे, यह अज़ान देना मसनून है। अगर फ़र्ज़ करें कोई शख़्स मस्जिद में नमाज़ नहीं पढ़ रहा है बल्कि जंगल या बयाबान में नमाज़ पढ़ रहा है तो उस वक़्त भी सुन्नत यह है कि अज़ान दे, यहां तक कि अगर आदमी अकेला है तब भी हुक्म यह है कि अज़ान देकर नमाज़ पढ़े। क्योंकि अज़ान अल्लाह के दीन का एक शिआ़र और निशानी है, इसलिये हर नमाज़ के वक़्त अज़ान का हुक्म है। बाज़ उलमा-ए-किराम से सवाल किया गया कि जंगल और बयाबान में अज़ान देने से क्या फ़ायदा है? जब कि किसी और इन्सान के सुनने और सुनकर नमाज़ के लिये आने की कोई उम्मीद नहीं है। या जैसे ग़ैर मुस्लिमों का इलाक़ा है, तो फिर अज़ान देने से क्या फ़ायदा? इसलिये कि अज़ान की आवाज़ सुनकर कौन नमाज़ के लिये आयेगा? तो उलमा-ए-किराम ने जवाब में फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला की मख़्लूक़ बेशुमार हैं, हो सकता है कि इन्सान उस आवाज़ को न सुनें, लेकिन हो सकता है कि जिन्नात अज़ान की आवाज़ सुनकर आ जायें, या फ़रिश्ते आ जायें और वे तुम्हारी नमाज़ में शरीक हो जायें। बहर हाल! हुक्म यह है कि नमाज़ से पहले अज़ान दो, चाहे तुम अकेले

ही हो।

बड़े को इमाम बनायें

फिर आपने फ़रमाया कि:

"وليؤمكم اكبركم"

यानी तुम में से जो शख़्स उम्र में बड़ा हो वह इमामत करे। असल हुक्म यह है कि जमाअ़त के वक़्त बहुत से लोग मौजूद हैं तो उनमें जो शख़्स इल्म में ज़्यादा हो, उसको इमामत के लिये आगे करना चाहिये, लेकिन यहां पर चूंकि इल्म के एतिबार से ये हज़रात बराबर थे, सब इकट्ठे हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में आये थे। जो इल्म एक ने सीखा वही इल्म दूसरे ने भी सीखा, और हुक्म यह है कि जब इल्म में सब बराबर हों तो फिर जो शख़्स उम्र में बड़ा हो उसको आगे करना चाहिए, यह अल्लाह तआ़ला ने बड़े आदमी का एक ऐज़ाज़ और सम्मान रखा है कि जिसको अल्लाह तआ़ला ने उम्र में बड़ा बनाया है, छोटों को चाहिये कि उसको बड़ा मानें और बड़ा मान कर उसको आगे करें।

बड़े को बड़ाई देना इस्लामी अदब है

हदीस शरीफ़ में आता है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने में ख़ैबर, जो यहूदियों की बस्ती थी, वहां पर एक मुसलमान को यहूदियों ने क़त्ल कर दिया, जिन साहिब को क़त्ल किया गया था उनके एक भाई थे, जो उस क़त्ल होने वाले आदमी के वली थे, वारिस थे। वह भाई

अपने चचा को लेकर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास यह बताने आये कि हमारा भाई क़त्ल कर दिया गया, अब उसके बदला लेने का क्या तरीक़ा होना चाहिये। चूंकि यह भाई थे, यह रिश्ते के एतिबार से क़त्ल होने वाले शख़्स के ज़्यादा क़रीबी थे, और दूसरे चचा थे। ये दोनों हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में पहुंचे और क़त्ल होने वाले के भाई ने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से बात करनी शुरू कर दी और चचा ख़ामोश बैठे थे, तो उस वक़्त हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने क़त्ल होने वाले के भाई से फ़रमाया कि: "बड़े को बड़ाई दो" यानी जब एक बड़ा तुम्हारे साथ मौजूद है तो फिर तुम्हें गुफ़्तगू की शुरूआ़त न करनी चाहिये, बल्कि तुम्हें अपने चचा को कहना चाहिये कि गुफ़्तगू की शुरूआ़त करें, फिर जब ज़रूरत हो तो तुम भी दरमियान में गुफ़्तगू कर लेना, लेकिन बड़े को बड़ाई दो, यह भी इस्लामी आदाब का एक तक़ाज़ा है कि जो उम्र में बड़ा हो उसको आगे किया जाये, अगरचे उसको दूसरी कोई फ़ज़ीलत हासिल नहीं है, सिर्फ़ बड़ी उम्र होने की फ़ज़ीलत हासिल है, तो उसका भी अदब और लिहाज़ किया जाये और उसको आगे रखा जाये, न कि छोटा आगे बढ़ने की कोशिश करे। इसी लिये आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उन नौजवानों से फ़रमाया कि जब नमाज़ का वक़्त आ जाये तो तुम में से जो उम्र में बड़ा हो, उसको इमाम बना दो, इसलिये कि इमामत का

मन्सब (ओहदा) ऐसे आदमी को देना चाहिये जो सब में इल्म के एतिबार से बढ़ा हुआ हो, या कम से कम उम्र के एतिबार से ज़्यादा हो। अल्लाह तआला हमें इन बातों पर अमल करने की हिम्मत और तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, आमीन।

واخر دعوانا ان الحمد لله رب العالمين